Journal of Social Issues and Development (JSID)
(Himalayan Ecological Research Institute for Training and Grassroots Enhancement (HERITAGE)
ISSN: 2583-6994 (Vol. 3, Issue 2, May-August, 2025. pp. 169-181)

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' एवं भारतीय राजनीति : अपेक्षाएँ और चुनौतियाँ

डॉ० निशा रानी

सारांश

''एक राष्ट्र, एक चुनाव'' की अवधारणा समकालीन भारतीय राजनीति में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और बहस का विषय बन चुकी है। इस नीति का उद्देश्य लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के चुनावों को एक साथ कराने की व्यवस्था करना है, जिससे शासन व्यवस्था की दक्षता बढ़ाई जा सके, चुनावों की आवृत्ति कम हो तथा चुनावी खर्च में कमी लाई जा सके। स्वतंत्रता के बाद 1967 तक भारत में एकसमान चुनाव की परंपरा थी, परंतु राजनीतिक अस्थिरता और सरकारों के समय से पहले विघटन के कारण यह प्रणाली टूट गई।

आज की स्थिति में बार–बार चुनाव होने से न केवल सरकारी खर्च बढ़ता है, बल्कि आदर्श आचार संहिता के लागू होने से विकास कार्यों में भी बाधा आती है। यह शोध पत्र इस नीति से जुड़ी अपेक्षाओं जैसे प्रशासनिक लाभ, नीति निर्माण में निरंतरता और जनता की भागीदारी की संभावनाओं का विश्लेषण करता है। साथ ही, यह इससे जुड़ी प्रमुख चुनौतियों, जैसे संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता, संघीय ढांचे पर प्रभाव, क्षेत्रीय दलों की आपत्तियाँ और व्यवहारिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालता है।

शोध पत्र में विभिन्न पक्षों– जैसे राजनीतिक दलों, चुनाव आयोग, नीति आयोग एवं

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हरिओम सरस्वती पी.जी. कॉलेज, धनौरी, हरिद्वार (उत्तराखंड), Email-ID: nisharg1983@gmail.com

संविधान विशेषज्ञों के विचारों को सम्मिलित कर यह समझने का प्रयास किया गया है कि यह प्रणाली भारत जैसे विविधतापूर्ण लोकतंत्र में कितनी व्यावहारिक एवं लाभकारी हो सकती है। अंततः, यह शोध पत्र कुछ समाधान व सुझाव प्रस्तुत करता है जो इस व्यवस्था के क्रियान्वयन में सहायक हो सकते हैं।

मुख्य शब्दः एक राष्ट्र एक चुनाव, भारतीय राजनीति, चुनाव सुधार, संवैधानिक चुनौतियाँ, संघवाद।

प्रस्तावना

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा भारत की चुनावी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण सुधार के रूप में सामने आई है। इसका मूल तात्पर्य यह है कि देश भर में लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक ही समय पर कराए जाएं। वर्तमान समय में भारत में चुनाव निरंतर किसी न किसी राज्य में होते रहते हैं, जिससे शासन व्यवस्था, विकास कार्यों, प्रशासनिक तंत्र तथा वित्तीय संसाधनों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यह प्रस्ताव न केवल प्रशासनिक और वित्तीय दृष्टिकोण से कारगर माना जा रहा है, बल्कि राजनीतिक स्थिरता और लोकतांत्रिक प्रक्रिया की मजबूती के रूप में भी देखा जा रहा है।

इस अवधारणा को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जानना आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में प्रारंभिक वर्षों में 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की परंपरा थी। वर्ष 1952, 1957, 1962 और 1967 में लोकसभा तथा सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए गए थे।[1] यह व्यवस्था संविधान के तहत निर्धारित चुनावी समय सीमा के अनुसार स्वाभाविक रूप से बनी रही। किंतु 1967 के बाद जब विभिन्न राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता आई और कई राज्य सरकारें समय से पहले भंग कर दी गईं, तो चुनावों के समय में अंतराल उत्पन्न होने लगा। विशेषतः 1969 और 1970 में संसद के कार्यकाल की समयपूर्व समाप्ति तथा राज्य विधानसभाओं में बहुमत खोने जैसी परिस्थितियों ने इस परंपरा को भंग कर दिया।[2]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 83(2) और 172(1) के अनुसार, लोकसभा और राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल अधिकतम पांच वर्षों का होता है, लेकिन इन्हें उससे पहले भी भंग किया जा सकता है यदि सरकार अल्पमत में जाए या अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए आदि। यही कारण है कि राज्यों में चुनाव अब अलग–अलग समय पर होते हैं। यह प्रणाली जहां लोकतंत्र की जीवंतता को दर्शाती है, वहीं यह प्रशासनिक दृष्टिकोण से अनेक समस्याएं उत्पन्न करती है। प्रत्येक चुनाव के दौरान आचार संहिता लागू हो जाती है, जिससे शासन के निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रभावित होती है और विकास कार्य रुक जाते हैं। इसके साथ ही, बार–बार चुनाव कराने का खर्चा भी बहुत अत्यधिक होता है। भारत निर्वाचन आयोग के

अनुसार 2019 के लोकसभा चुनाव पर 60,000 करोड़ रुपये से अधिक खर्च हुए थे।[3] जब यह चुनाव राज्य विधानसभा चुनावों से अलग होते हैं, तब यह लागत कई गुना बढ़ जाती है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी कई मंचों से इस विचार का समर्थन किया है। उनका कहना है कि ''हर साल किसी न किसी राज्य में चुनाव होते रहते हैं, जिससे शासन की प्रक्रिया बाधित होती है। अगर सभी चुनाव एक साथ हों, तो समय, संसाधन और ऊर्जा की बचत हो सकती है।''[4]

साथ ही, नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'एक राष्ट्र, एक चुनाव : एक अध्ययन'[5] में इस अवधारणा के पक्ष में कई तर्क प्रस्तुत किए हैं, जैसे खर्च में कमी, आचार संहिता से बचाव और सुशासन में निरंतरता। हालांकि यह भी स्वीकार किया गया है कि इसके लिए संवैधानिक संशोधन आवश्यक होगा।

इस प्रकार, 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' केवल एक चुनावी सुधार नहीं बल्कि भारतीय लोकतंत्र के पुनरावलोकन की दिशा में एक कदम है। इसका उद्देश्य चुनावों की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, पारदर्शी और समन्वित बनाना है, ताकि संसाधनों का बेहतर उपयोग हो सके और शासन व्यवस्था को बाधा मुक्त बनाया जा सके।

आवश्यकता और प्रासंगिकता

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहाँ हर वर्ष किसी न किसी राज्य में चुनाव होते रहते हैं। इससे न केवल प्रशासनिक व्यवस्था पर दबाव बढ़ता है, बल्कि विकास कार्यों की गति पर भी प्रभाव पड़ता है। बार–बार लागू होने वाली आदर्श आचार संहिता के कारण नीति निर्माण और शासन व्यवस्था में रुकावट आती है। साथ ही, चुनावों में भारी मात्रा में धन और मानव संसाधनों का उपयोग होता है।

वर्तमान चुनाव प्रणाली में लगातार खर्च बढ़ता जा रहा है। भारत निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, 2019 के आम चुनाव में 60,000 करोड़ से अधिक खर्च हुआ, जो कि विश्व के सबसे महंगे चुनावों में से एक था।[6] यह आर्थिक भार, प्रशासनिक बाधाएं और राजनीतिक अस्थिरता 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की आवश्यकता को उजागर करते हैं।

इसके अतिरिक्त, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में केंद्र और राज्यों के संबंधों, संघीय ढांचे की स्थिरता, तथा लोकतांत्रिक सशक्तिकरण की दृष्टि से यह शोध पत्र अत्यंत प्रासंगिक है। नीति आयोग, विधि आयोग और संसद की स्थायी समिति जैसे निकायों ने भी इस प्रणाली की व्यवहार्यता पर विचार करने का सुझाव दिया है। इस शोध पत्र का उद्देश्य इन्हीं पहलुओं की गहराई से जांच करना है।

उद्देश्य

इस शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य "एक राष्ट्र, एक चुनाव" अवधारणा की व्यावहारिकता, प्रभाव और संभावनाओं का विश्लेषण करना है। इसके अतिरिक्त–

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वर्तमान चुनाव प्रणाली की तुलना करना।
2. इस नीति से संबंधित प्रशासनिक, संवैधानिक और राजनीतिक अपेक्षाओं को समझना।
3. इस अवधारणा से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों की पहचान और उनका विश्लेषण करना।
4. विभिन्न हितधारकों (राजनीतिक दलों, चुनाव आयोग, विशेषज्ञों आदि) की राय का मूल्यांकन करना।
5. व्यवहारिक समाधान और नीति–संशोधन के सुझाव प्रस्तुत करना।

अनुसंधान प्रश्न

इस शोध पत्र में निम्नलिखित प्रमुख अनुसंधान प्रश्नों पर विचार किया गया है–

1. क्या 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा भारतीय लोकतंत्र के लिए व्यावहारिक है?
2. इससे शासन व्यवस्था, चुनावी खर्च और नीति निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ सकता है?
3. इसके क्रियान्वयन में कौन–कौन सी संवैधानिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ सामने आती हैं?
4. विभिन्न राजनीतिक दल और सामाजिक समूह इस अवधारणा को किस प्रकार देखते हैं?
5. क्या यह व्यवस्था भारत जैसे विविधतापूर्ण संघीय देश में सफलतापूर्वक लागू की जा सकती है?

सीमाएं

हर शोध पत्र की कुछ सीमाएं होती हैं और यह शोध पत्र भी उससे अछूता नहीं है। इस शोध पत्र की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. यह शोध पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों (जैसे रिपोर्ट, पुस्तकें, समाचार आदि) पर आधारित है; प्रत्यक्ष साक्षात्कार सीमित हैं।
2. सभी राज्यों की चुनावी स्थितियों और राजनीतिक परिदृश्यों का व्यापक तुलनात्मक अध्ययन संभव नहीं हो पाया।

3. चूँकि यह एक संभावित नीति है, इसलिए इसके दीर्घकालिक प्रभाव केवल सैद्धांतिक और अनुमानात्मक रूप से विश्लेषित किए गए हैं।
4. विषय संवेदनशील और राजनीतिक दृष्टि से विभाजित होने के कारण, कुछ स्रोत पक्षपाती हो सकते हैं।
5. शोध पत्र का क्षेत्र केवल भारतीय परिप्रेक्ष्य तक सीमित रखा गया है; वैश्विक तुलनात्मक विश्लेषण सीमित है।

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा भारत के चुनावी परिदृश्य में एक व्यापक और प्रभावशाली सुधार के रूप में उभर कर सामने आई है। इस विचार के अनुसार, भारत में लोकसभा (संसद) और सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक ही समय पर कराए जाएं, ताकि चुनावी प्रक्रिया की आवृत्ति कम हो और प्रशासनिक एवं आर्थिक संसाधनों की बचत हो सके। वर्तमान व्यवस्था में विभिन्न राज्यों और केंद्र के चुनाव अलग–अलग समय पर होते हैं, जिसके कारण वर्ष भर देश में कहीं न कहीं चुनाव चलते रहते हैं। इससे न केवल संसाधनों पर बोझ पड़ता है, बल्कि शासन व्यवस्था भी बाधित होती है।

इस अवधारणा का मूल उद्देश्य प्रशासनिक दक्षता, वित्तीय व्यय में कमी और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अधिक संगठित बनाना है। साथ ही, यह मतदाता की भागीदारी को बढ़ाने, चुनावी शुचिता बनाए रखने और आचार संहिता के दुरुपयोग को रोकने की दृष्टि से भी एक प्रभावी कदम माना जा रहा है।[7] नीति आयोग (NITI Aayog) की 2018 की रिपोर्ट के अनुसार, यदि सभी चुनाव एक साथ कराए जाएं, तो देश की विकास प्रक्रिया अधिक स्थिर और सुचारु हो सकती है।

भारतीय संविधान में चुनाव व्यवस्था

भारतीय संविधान में चुनावों की व्यवस्था को स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 324 से 329 तक निर्दिष्ट किया गया है। अनुच्छेद 324 में निर्वाचन आयोग की स्थापना तथा उसकी शक्तियों का वर्णन किया गया है, जबकि अनुच्छेद 83(2) लोकसभा के कार्यकाल को पाँच वर्षों तक सीमित करता है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 172(1) राज्य विधानसभाओं की अवधि भी पाँच वर्ष निश्चित करता है। इन अनुच्छेदों में यह भी प्रावधान है कि लोकसभा या विधानसभा को आवश्यकता अनुसार कार्यकाल की समाप्ति से पहले भंग भी किया जा सकता है।

संविधान में स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा गया है कि चुनाव एक साथ ही कराए जाने चाहिए। हालांकि प्रारंभिक वर्षों में संविधान की संरचना एवं राजनीतिक स्थिरता ऐसी थी कि सभी चुनाव एक साथ ही होते थे। वर्ष 1952, 1957, 1962 और 1967 में देश में लोकसभा और

सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ आयोजित किए गए थे।[8] परंतु 1967 के बाद राजनीतिक अस्थिरता, गठबन्धन सरकारों की असफलता और राष्ट्रपति शासन की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण चुनावों का चक्र टूट गया और राज्यों के चुनाव अलग–अलग समय पर होने लगे।

इसलिए यदि भारत को पुनः एकसमान चुनावों की ओर बढ़ना है, तो संविधान में कुछ संशोधन करने होंगे। जैसे अनुच्छेद 83 और 172 में कार्यकाल का लचीलापन, राष्ट्रपति शासन की धारा 356 की पुनर्व्याख्या और अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग की संभावनाओं पर भी नियंत्रण आवश्यक होगा।[9]

चुनाव आयोग की भूमिका

भारत निर्वाचन आयोग संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत स्थापित एक स्वायत्त निकाय है, जिसे भारत में चुनावों की निगरानी और निष्पक्षता बनाए रखने की जिम्मेदारी दी गई है। आयोग की भूमिका 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा के कार्यान्वयन में अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।

आयोग को न केवल एक साथ चुनाव आयोजित करने के लिए विस्तृत योजना बनानी होगी, बल्कि पर्याप्त मानव संसाधन, ईवीएम मशीनें, सुरक्षा व्यवस्था और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना भी बनानी होगी। वर्ष 2016 में भारत निर्वाचन आयोग ने विधि आयोग को सुझाव दिया था कि ''एक साथ चुनाव तब तक संभव नहीं जब तक संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन न हो और राजनीतिक सर्वसम्मति प्राप्त न हो।''[10]

इसके अतिरिक्त, आयोग को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि चुनावी प्रक्रिया में कोई तकनीकी या प्रशासनिक बाधा उत्पन्न न हो। विभिन्न क्षेत्रों में कानून व्यवस्था की स्थिति, भौगोलिक कठिनाइयाँ और मतदाता जागरूकता की स्थिति आयोग के लिए प्रमुख चुनौतियाँ होंगी।

वर्तमान में अलग–अलग चुनावों की प्रणाली और उसका प्रभाव

वर्तमान व्यवस्था में चुनाव भारत के विभिन्न राज्यों में अलग–अलग समय पर होते हैं। यह व्यवस्था यद्यपि संघीय ढांचे को स्वीकार करती है और प्रत्येक राज्य को स्वतंत्र चुनावी अधिकार देती है, परंतु इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

सबसे पहले, इससे देश में लगभग हर वर्ष चुनाव होते हैं, जिसके चलते शासन की निरंतरता बाधित होती है। बार–बार आचार संहिता लागू होने से विकास योजनाओं पर रोक लग जाती है और सरकारी मशीनरी चुनावी कार्य में व्यस्त हो जाती है। दूसरा, इससे चुनावी खर्च अत्यधिक बढ़ जाता है। 2019 के लोकसभा चुनाव और उसी वर्ष कुछ राज्यों के चुनावों पर कुल मिलाकर 70,000 करोड़ से अधिक का खर्च हुआ।[11]

तीसरा, राजनीतिक दलों के लिए प्रचार अभियान, रणनीति निर्माण और संसाधनों का समुचित उपयोग करना कठिन हो जाता है। अलग–अलग राज्यों में विभिन्न चुनावी मुद्दे उभरते हैं, जिससे राष्ट्रीय विमर्श का अभाव हो जाता है। इसके अलावा, मतदाता भी बार–बार चुनावों से थक जाते हैं, जिससे मतदान प्रतिशत में गिरावट आती है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो बार–बार चुनावों का असर सरकार की स्थिरता और नीतिगत निर्णयों पर भी पड़ता है। नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ''लगातार चुनाव नीतियों को अल्पकालिक बना देते हैं और दीर्घकालिक विकास योजनाओं को राजनीतिक लाभ के लिए टाल दिया जाता है।''[12]

अपेक्षाएँ

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा से अनेक सकारात्मक अपेक्षाएँ जुड़ी हैं, जिन्हें व्यवहारिक रूप से शासन, प्रशासन और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सुधार की दिशा में देखा जा रहा है। यह प्रणाली केवल चुनावी प्रक्रिया को सरल बनाने का विचार नहीं है, बल्कि शासन प्रणाली की स्थायित्व, नीति निर्माण में गति और जनता की भागीदारी को मजबूत करने की दिशा में एक समग्र सुधार के रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

प्रशासनिक खर्च में कमी– सबसे बड़ी अपेक्षा इस नीति से जुड़ी है, प्रशासनिक खर्च में भारी कमी। भारत में हर चुनाव के दौरान लाखों सुरक्षाकर्मियों की तैनाती, हजारों अधिकारियों का प्रशिक्षण, इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVMs) और वीवीपैट की व्यवस्था, मतगणना की तैयारी, एवं प्रचार सामग्री आदि पर अरबों रुपये खर्च होते हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में ध्60,000 करोड़ से अधिक का खर्च हुआ था, जबकि जब राज्य विधानसभाओं के चुनाव अलग से होते हैं तो यह खर्च और अधिक हो जाता है।[13] नीति आयोग की रिपोर्ट में उल्लेख है कि यदि सभी चुनाव एकसाथ कराए जाएं तो 40 प्रतिशत तक खर्च में कमी की संभावना है।[14]

चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता– बार–बार चुनावों से राजनीतिक दलों को निरंतर प्रचार और धन संग्रह की आवश्यकता होती है, जिससे पारदर्शिता प्रभावित होती है। चुनावों में अवैध धन, जातिवादी और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और झूठे वादों का प्रयोग अक्सर देखा गया है। एक साथ चुनाव कराने से प्रचार का समय सीमित होगा और सभी दलों को समान स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने का अवसर मिलेगा। जैसा कि एस० वेंकटरमण ने कहा, "एक साथ चुनाव कराने से चुनावी वित्तपोषण में राजकोषीय अनुशासन और पारदर्शिता लागू होगी।"[15] इससे भ्रष्टाचार में कमी आने की संभावना है।

शासन प्रणाली में स्थायित्व– लगातार चुनावी गतिविधियों के कारण सरकारें अक्सर अल्पकालिक और लोकलुभावन निर्णयों तक सीमित रह जाती हैं। इससे शासन प्रणाली में अस्थिरता आती है। 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' के माध्यम से सरकारें पूरे कार्यकाल की योजना

बनाकर नीतियों को कार्यान्वित कर सकेंगी, जिससे स्थायित्व बढ़ेगा। संसद और विधानसभाओं में विधायी कार्य अधिक निर्बाध रूप से संपन्न हो सकेंगे।[16] इससे नीतिगत निर्णयों में दीर्घकालिक सोच को बल मिलेगा।

विकास कार्यों में निरंतरता– प्रत्येक चुनाव के दौरान आदर्श आचार संहिता लागू होती है, जिससे विकास कार्यों पर रोक लग जाती है। बार–बार चुनावों से यह प्रक्रिया बारंबार बाधित होती है। 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' के लागू होने से विकास कार्यों में निरंतरता बनी रह सकती है। सरकारें अपनी परियोजनाओं को चुनावी हस्तक्षेप के बिना सुचारु रूप से लागू कर पाएंगी, जिससे योजना आयोग तथा विभिन्न मंत्रालयों के कार्य प्रभावित नहीं होंगे।[17]

नीति–निर्माण में कम बाधा– नीतियों का निर्माण तब अधिक प्रभावशाली होता है जब सरकारें पूरे कार्यकाल तक बिना राजनीतिक दबाव के कार्य कर सकें। वर्तमान व्यवस्था में हर छह महीने में किसी राज्य में चुनाव होने के कारण केंद्र सरकार को अपने निर्णयों में राजनीतिक संतुलन बनाना पड़ता है, जिससे नीति निर्माण प्रभावित होता है। 'एक साथ चुनाव' के माध्यम से सरकारें पाँच वर्षों तक निर्विघ्न कार्य कर सकती हैं, जिससे योजनाएं पूर्ण हो सकती हैं और निर्णयों में स्पष्टता आ सकती है।[18]

जनता की भागीदारी और जागरूकता में वृद्धि– एक साथ चुनावों से मतदाताओं को अधिक संगठित और जागरूक ढंग से मतदान करने का अवसर मिलेगा। चुनावी सूचना एक ही समय में प्रचारित होगी जिससे जनता की भागीदारी बढ़ेगी और सूचना का संप्रेषण अधिक प्रभावशाली होगा। इससे मतदाता विभिन्न स्तरों की सरकारों (केंद्र और राज्य) की नीतियों का तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन कर पाएंगे। चुनावी साक्षरता भी बढ़ेगी और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में जनता की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित होगी।[19]

चुनौतियाँ

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा जितनी आकर्षक प्रतीत होती है, उसके क्रियान्वयन में उतनी ही जटिल संवैधानिक, प्रशासनिक, राजनीतिक और तकनीकी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। यह विचार न केवल चुनावी सुधार से जुड़ा है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के संघीय ढांचे, राज्यों की स्वायत्तता और संवैधानिक प्रावधानों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। यदि इन चुनौतियों पर गंभीर विमर्श न किया जाए, तो इन योजनाओं को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकेगा।

संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता– 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' को लागू करने के लिए भारतीय संविधान के कई प्रावधानों में संशोधन करना आवश्यक होगा, विशेषतः अनुच्छेद 83(2), 85(2)(इ), 172(1), 174(2)(इ), 356 आदि, जो संसद और राज्य विधानसभाओं की कार्यावधि तथा विघटन से संबंधित हैं। संविधान के अनुसार संसद और राज्य विधानसभाओं का

कार्यकाल अधिकतम पाँच वर्ष है, लेकिन इसे परिस्थिति अनुसार पहले भी भंग किया जा सकता है।

संविधान विशेषज्ञ दुर्गा दास बसु का मानना है कि ''भारत जैसे विविधतापूर्ण और संघीय देश में चुनावों को समन्वित करने के लिए, संवैधानिक संशोधनों को लोकतांत्रिक स्वायत्तता के वर्तमान ढांचे को दरकिनार करना होगा।''[20]

इसलिए, इस प्रणाली के क्रियान्वयन के लिए संविधान के साथ–साथ जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में भी व्यापक संशोधन अपेक्षित हैं, जिसके लिए संसद में दो–तिहाई बहुमत और अधिकांश राज्यों की सहमति आवश्यक होगी।

केंद्र–राज्य संबंधों पर प्रभाव– भारत एक संघात्मक गणराज्य है, जिसमें केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन स्पष्ट रूप से किया गया है। यदि केंद्र सरकार चुनावों की समय–सीमा तय करने लगेगी या राज्यों को कार्यकाल बढ़ाने या घटाने के लिए बाध्य करेगी, तो यह राज्यों की स्वायत्तता में हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक विश्लेषक रामाश्रय रॉय लिखते हैं, "एक साथ चुनाव कराने से केंद्र को राज्य के कार्यों पर असंगत नियंत्रण मिल सकता है, जिससे सहकारी संघवाद की भावना को खतरा हो सकता है।"[21] इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि क्या यह योजना केंद्र–राज्य संबंधों में असंतुलन पैदा करेगी?

संघीय ढांचे की संभावित कमजोरी– एक साथ चुनावों के कारण राज्यों की राजनीतिक विशिष्टता समाप्त होने की आशंका है। यह भारतीय संघीय ढांचे को एकात्मकता (centralization) की ओर धकेल सकता है। क्षेत्रीय मुद्दों की अनदेखी और स्थानीय शासन की आवाज दब सकती है।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी जैसे प्रारंभिक संवैधानिक विचारकों ने संघीय संरचना को "India's democratic insurance" कहा था।[22] यदि राज्यों की चुनावी स्वतंत्रता सीमित होती है, तो यह उस बीमा को कमजोर कर सकता है।

क्षेत्रीय दलों की आशंकाएं– बहुत से क्षेत्रीय दलों को आशंका है कि यदि चुनाव एक साथ कराए जाते हैं तो राष्ट्रीय दलों को अधिक लाभ होगा और उनके स्थानीय मुद्दे दब जाएंगे। लोकसभा के मुद्दों और व्यक्तित्व आधारित प्रचार से क्षेत्रीय मुद्दों की उपेक्षा हो सकती है।

नीति आयोग की रिपोर्ट (2018) में यह भी स्वीकार किया गया कि ''छोटे दलों में यह वास्तविक चिंता है कि एक साथ चुनाव कराने से चुनावी बहस का राष्ट्रीयकरण हो सकता है।''[23] यह स्थिति भारत के बहुदलीय लोकतंत्र की विविधता को प्रभावित कर सकती है।

राज्य सरकारों की स्वायत्तता– यदि किसी राज्य सरकार का कार्यकाल या चुनाव किसी केंद्रीय समय–सारणी के अनुसार तय होगा, तो यह राज्य की लोकतांत्रिक संप्रभुता को सीमित करेगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य में असमय चुनाव की आवश्यकता हो और उसे टालकर अगली एकसमान चुनाव तिथि तक चलाना पड़े, तो वहाँ अलोकप्रिय या अल्पमत सरकार को अनावश्यक रूप से बनाए रखना पड़ेगा। इससे संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है।

असमय सरकार गिरने की स्थिति में क्या होगा?– यदि किसी राज्य या केंद्र की सरकार बहुमत खो दे या अविश्वास प्रस्ताव के कारण गिर जाए, तो क्या दोबारा चुनाव होंगे या अस्थायी समाधान होगा? यह प्रश्न इस नीति की सबसे बड़ी व्यावहारिक चुनौती है। क्या सभी सरकारों को कार्यकाल पूरा करने के लिए बाध्य किया जाएगा, चाहे वे जनता का विश्वास खो चुकी हों अथवा नहीं?

जस्टिस बी०एन० श्रीकृष्ण ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "अस्थिर गठबंधन वातावरण में निश्चित कार्यकाल लागू करना कानूनी रूप से नाजुक और राजनीतिक रूप से अव्यावहारिक है।"[24]

चुनाव आयोग पर बोझ– भारत निर्वाचन आयोग को यदि एक साथ लोकसभा और सभी विधानसभाओं के चुनाव कराने पड़ें, तो व्यवस्थापकीय दबाव कई गुना बढ़ जाएगा। मशीनों, कार्मिकों, सुरक्षा बलों, मतदान केंद्रों और लॉजिस्टिक नेटवर्क की व्यापक व्यवस्था करनी होगी, जो वर्तमान प्रणाली से कई गुना अधिक जटिल होगी।

लॉजिस्टिक और सुरक्षा संबंधित समस्याएं– भारत जैसे विशाल और विविधता–पूर्ण देश में एक साथ चुनाव कराना प्रशासनिक और सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत कठिन कार्य होगा। हजारों किलोमीटर दूर स्थित क्षेत्रों में एक ही दिन मतदान कराना, मशीनें पहुँचाना और निष्पक्ष मतदान सुनिश्चित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।

केंद्र और राज्यों में सुरक्षा बलों की कमी, संवेदनशील क्षेत्रों में पर्याप्त प्रबंधन और स्थानीय समस्याएं इस प्रक्रिया को बाधित कर सकती हैं। निर्वाचन आयोग के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार, "एक साथ चुनाव कराने के लिए वर्तमान प्रशासनिक बुनियादी ढांचे से तीन गुना अधिक की आवश्यकता होगी।"[25]

संभावित समाधान और सुझाव

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा भारतीय लोकतंत्र के लिए एक महत्वपूर्ण परिकल्पना है, लेकिन इसके क्रियान्वयन में अनेक संवैधानिक, राजनीतिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु कुछ संभावित उपाय और सुझाव निम्नलिखित हैं–

संवैधानिक संशोधन के संभावित मॉडल– इस विचार को लागू करने के लिए सबसे पहला कदम होगा भारत के संविधान में आवश्यक संशोधन। कुछ प्रमुख अनुच्छेदों जैसे अनुच्छेद 83(2) (लोकसभा का कार्यकाल), अनुच्छेद 172(1) (राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल) और अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) में संशोधन आवश्यक होगा।

विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट (1999) और 255वीं रिपोर्ट (2015) में यह सुझाव दिया कि अगर एकसमान चुनाव कराने हैं, तो इन अनुच्छेदों को इस प्रकार संशोधित किया जा सकता है कि संसद और विधानसभाओं के कार्यकाल को स्थिर समयावधि में बदला जा सके और पूर्व निर्धारित परिस्थितियों में ही विघटन संभव हो।

इन संशोधनों के लिए संसद में दो–तिहाई बहुमत और कम से कम आधी राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति आवश्यक होगी।[26] अतः यह केवल कानूनी नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रक्रिया भी है।

दो चरणों में चुनाव (जैसे– राष्ट्रीय चुनाव एक साथ, राज्य चुनाव अलग)– यदि एक साथ लोकसभा और सभी राज्यों के चुनाव कराना तत्काल संभव नहीं है, तो दो चरणों में चुनाव कराने की रणनीति अपनाई जा सकती है। उदाहरण–

- पहले चरण में लोकसभा और कुछ राज्यों के चुनाव एक साथ कराए जाएं।
- दूसरे चरण में शेष राज्यों के चुनाव 2.5 वर्षों बाद कराए जाएं।

इस मॉडल को नीति आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट श्One Nation, One Election : A Study" (2018) में समर्थन दिया है। इससे एकसमान चुनाव की दिशा में पहला कदम रखा जा सकता है और प्रशासनिक व संवैधानिक बोझ भी कम होगा।

स्थायी कार्यकाल सुनिश्चित करने हेतु उपाय– चुनावों को एक साथ कराने के लिए यह जरूरी होगा कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल पूर्व निर्धारित 5 वर्षों तक चले। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं–

- सदन के विघटन को सीमित परिस्थितियों में ही अनुमति दी जाए, जैसे– विश्वास मत में असफलता होने पर जब अन्य कोई विकल्प ही न बचे।
- राष्ट्रपति शासन या मध्यावधि चुनाव की स्थिति में शेष कार्यकाल के लिए ही चुनाव कराए जाएं और अगला चुनाव पूर्व निर्धारित तिथि पर ही हो।
- संविधान में निर्धारित तिथि आधारित चुनाव प्रणाली अपनाई जाए (जैसे अमेरिका में है), ताकि कार्यकाल में स्थिरता बनी रहे।

आम सहमति बनाने की रणनीति– 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' जैसे व्यापक नीति परिवर्तन

के लिए राजनीतिक दलों, राज्यों, चुनाव आयोग, विधि विशेषज्ञों और नागरिक समाज के बीच सामूहिक संवाद की आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं–

- सर्वदलीय बैठकें आयोजित की जाएं, जहाँ विचार–विमर्श से सहमति बनाई जा सके।
- संवैधानिक समीक्षा समिति गठित की जाए जिसमें सभी हितधारकों को प्रतिनिधित्व मिले।
- पायलट प्रोजेक्ट के रूप में एक–दो राज्यों में एकसमान चुनावों का परीक्षण किया जाए।
- जन जागरूकता अभियान चलाए जाएं ताकि जनता इस विषय को समझे और उसमें भागीदारी करें।

नीति आयोग (2018) का सुझाव है कि ''केवल सहकारी संघवाद और आम सहमति पर आधारित संवाद के माध्यम से ही इस तरह के महत्वपूर्ण सुधार को व्यवहार्य और सफल बनाया जा सकता है।''

निष्कर्ष

'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की अवधारणा भारतीय लोकतंत्र के भीतर एक ऐसी विचारधारा है जो प्रशासनिक दक्षता, संसाधनों की बचत और राजनीतिक स्थायित्व की संभावनाओं के साथ जुड़ी हुई है। इस शोध पत्र में किए गए विश्लेषणों से यह स्पष्ट होता है कि यह व्यवस्था न केवल एक दूरदृष्टिपूर्ण राजनीतिक सुधार है, बल्कि यह भारत जैसे विशाल लोकतंत्र के चुनावी तंत्र को अधिक संगठित और सुव्यवस्थित बनाने की दिशा में एक प्रयास भी है। किंतु इसके साथ अनेक जटिलताएँ और बाधाएँ भी जुड़ी हुई हैं, जिनका समाधान बिना समग्र दृष्टिकोण और बहुस्तरीय संवाद के संभव नहीं है।

राजनीति पर इसका प्रभाव चुनावी रणनीतियों में बदलाव, चुनावी खर्च की कमी और दलगत राजनीति की स्थिरता के रूप में देखा जा सकता है। प्रशासनिक दृष्टिकोण से निरंतर विकास कार्य, नीतियों की दीर्घकालीन योजना और आचार संहिता के कम बार लागू होने से सुचारु शासन संभव होगा। वहीं लोकतंत्र पर इसके प्रभाव दोधारी हो सकते हैं, एक ओर यह चुनावी प्रक्रिया में अनुशासन ला सकता है, दूसरी ओर राज्यों की स्वतंत्रता और क्षेत्रीय विविधताओं के प्रतिनिधित्व पर प्रश्न भी उठा सकता है।

अंततः, 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' एक संवेदनशील लेकिन संभावनाशील विषय है, जिसे लोकतांत्रिक मूल्यों और संघीय संतुलन के साथ–साथ प्रशासनिक सुधारों की दिशा में बढ़ाया जाना चाहिए। यह एक दिन में लागू होने वाला परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समय, संवाद और सहमति की मांग करती है। यदि यह संतुलित और समावेशी तरीके

से लागू होता है, तो यह भारत के लोकतंत्र को और अधिक प्रभावशाली व समृद्ध बना सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, ए०के०, भारतीय राज्यव्यवस्था और निर्वाचन की प्रक्रिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2009, पृ०सं० 124
2. चोपड़ा, जे०के०, भारत में राजनीति : निरंतरता और परिवर्तन, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012, पृ०सं० 87
3. भारत निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट, 2020, पृ०सं० 34
4. मोदी, मन की बात, ऑल इंडिया रेडियो, 2018 प्रसारण, जुलाई संस्करण
5. नीति आयोग, 2018
6. भारत निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट, 2020
7. सिंह, एम०पी०, भारत में निर्वाचन सुधार, प्रेंटिस हॉल इंडिया, नई दिल्ली, 2016, पृ०सं० 42
8. बसु, दुर्गा दास, भारतीय संविधान की भूमिका, लेक्सिसनेक्सिस, गुरुग्राम, 2013, पृ०सं० 423
9. चोपड़ा, जे०के०, भारतीय शासन और विधि, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2019, पृ०सं० 167
10. विधि आयोग की रिपोर्ट संख्या 255, भारत सरकार, 2016, पृ०सं० 58
11. सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज़ रिपोर्ट, नई दिल्ली, 2020, पृ०सं० 22
12. नीति आयोग की रिपोर्ट, 2018, पृ०सं० 11
13. सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज़ रिपोर्ट, नई दिल्ली, 2020, पृ०सं० 23
14. नीति आयोग, एक राष्ट्र, एक चुनाव : एक अध्ययन, 2018, पृ०सं० 17
15. वेंकटरमण, भारतीय लोकतंत्र में सुधार, मैकमिलन, मुंबई, 2014, पृ०सं० 98
16. चोपड़ा, जे०के०, भारतीय राज्यव्यवस्था : अवधारणाएँ और व्यवहार, अनमोल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2015, पृ०सं० 129
17. रॉय, रामाश्रय, भारत में शासन और विकास, ओरिएंट लॉन्गमैन, हैदराबाद, 2011, पृ०सं० 142
18. बसु, दुर्गा दास, भारतीय संविधान की भूमिका, लेक्सिसनेक्सिस, गुरुग्राम, 2013, पृ०सं० 445
19. मेहता, प्रताप भानु, लोकतंत्र का बोझ, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2003, पृ०सं० 76
20. बसु, दुर्गा दास, भारतीय संविधान की भूमिका, लेक्सिसनेक्सिस, गुरुग्राम, 2013, पृ०सं० 466
21. रॉय, रामाश्रय, भारत में शासन और संघीयता, ओरिएंट लॉन्गमैन, हैदराबाद, 2011, पृ०सं० 145
22. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ, भारतीय राष्ट्रीयता, लॉन्गमैन्स, लंदन, 1943, पृ०सं० 211
23. नीति आयोग, एक राष्ट्र, एक चुनाव : एक अध्ययन, 2018, पृ०सं० 26
24. श्रीकृष्ण, बी०एन०, निर्वाचन सुधार पर रिपोर्ट, भारत सरकार, 2016, पृ०सं० 45
25. भारत निर्वाचन आयोग का आंतरिक ज्ञापन, 2017, उद्धृत : द हिन्दू, 2018 संस्करण, पृ०सं० 12
25. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 368